ResearchNext International Multidisciplinary Journal

Vol- 2, Issue- 1, January-March 2026 ISSN (O)- 3107-9725

Email id: editor@researchnextjournal.com Website- www.researchnextjournal.com

महात्मा गांधी और सांप्रदायिक एकता का प्रश्नः एक आलोचनात्मक और ऐतिहासिक मूल्यांकन

नीतु कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

Article Info: *(Recieved- 27/12/2025, Accept- 02/02/2026, Published- 10/02/2026)*

DOI- 10.64127/rnimj.2026v2i10010

सारांश–

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में महात्मा गांधी के धार्मिक–राजनीतिक दर्शन और सांप्रदायिक एकता के प्रश्न का एक आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। गांधीवादी राष्ट्रवाद की मूल धुरी यह अकाट्य विश्वास था कि हिंदू–मुस्लिम एकता स्वराज्य प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य और प्राथमिक शर्त है। इस शोध में गांधी जी के सर्वधर्म समभाव के सिद्धांत, पश्चिमी मॉडल से इतर उनकी सकारात्मक धार्मिक एकता की अवधारणा तथा हृदय–परिवर्तन की तकनीक का गहराई से विश्लेषण किया गया है। 1919–1922 के खिलाफत आंदोलन को मुख्य आधार बनाते हुए यह पत्र रेखांकित करता है कि कैसे यह दौर हिंदू–मुस्लिम एकता का चरमोत्कर्ष होने के साथ–साथ अनजाने में राजनीति के भीतर धार्मिक पहचान के अति–राजनीतिकरण का प्रारंभिक बिंदु भी साबित हुआ।

यह शोध पत्र 1920 और 1930 के दशकों में उभरते सांप्रदायिक दंगों, गांधी जी के दिल्ली उपवास (1924) तथा गोलमेज सम्मेलन व सांप्रदायिक पंचाट (1932) जैसी औपनिवेशिक चुनौतियों के सामने गांधीवादी कूटनीति की सीमाओं की पड़ताल करता है। इसके अतिरिक्त, इसमें 1940 के दशक में मोहम्मद अली जिन्ना के द्वि–राष्ट्र सिद्धांत, जिन्ना–गांधी वार्ता (1944) की विफलता और कांग्रेस के भीतर बढ़ते पुनरुत्थानवादी दबावों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया गया है। अंततः, यह शोध रेखांकित करता है कि यद्यपि गांधी जी विभाजन की त्रासदी को रोकने में सांगठनिक और प्रशासनिक रूप से असफल रहे, परंतु नोआखली (1946–47) में उनका एकाकी शांति मार्च (वन–मैन बाउंड्री फोर्स) उनके नैतिक और मानवीय संघर्ष की सर्वोच्चता को प्रमाणित करता है।

मुख्य शब्द– महात्मा गांधी, सांप्रदायिक एकता, सर्वधर्म समभाव, खिलाफत आंदोलन, द्वि–राष्ट्र सिद्धांत, नोआखली का संघर्ष, अल्पसंख्यक समावेश।

1. प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक एक युगांतकारी परिवर्तन का गवाह बना, जब दक्षिण अफ्रीका के सफल प्रयोगों के बाद मोहनदास करमचंद गांधी का भारत के राजनीतिक क्षितिज पर पदार्पण हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका और रौलट एक्ट जैसे काले कानूनों के बीच गांधी जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पारंपरिक, कुलीन और संवैधानिक तौर–तरीकों को बदलकर उसे एक बहुआयामी जन–आंदोलन का रूप दे दिया। गांधी जी के इस संपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक दर्शन के केंद्र में जो तत्व सबसे प्रखर रूप से विद्यमान था, वह थाकृसांप्रदायिक एकता। गांधी जी भली–भांति जानते थे कि भारत जैसी धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषाई विविधताओं से भरी भूमि पर बिना आंतरिक सुदृढ़ता के किसी भी बड़े औपनिवेशिक साम्राज्यवादी प्रतिरोध की कल्पना नहीं की जा सकती। उनके लिए राजनीति महज़ सत्ता हस्तांतरण का साधन नहीं थी, बल्कि यह समाज के नैतिक पुनर्निर्माण की एक प्रक्रिया थी। इस नैतिक पुनर्निर्माण में विभिन्न धार्मिक समुदायों, विशेष

रूप से बहुसंख्यक हिंदुओं और अल्पसंख्यक मुसलमानों के बीच पारस्परिक विश्वास और बंधुत्व की स्थापना उनके जीवन का सर्वोच्च मिशन बन गई।

गांधीवादी राजनीतिक चेतना और रणनीतिक दृष्टिकोण की मुख्य धुरी यह अकाट्य विश्वास था कि हिंदू–मुस्लिम एकता केवल एक राजनीतिक आवश्यकता नहीं, बल्कि भारत की आत्मा की आंतरिक पुकार है। गांधी जी ने बार–बार इस बात को रेखांकित किया कि जब तक देश के दो बड़े समुदाय एक सूत्र में नहीं बंधेंगे, तब तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत से उखाड़ फेंकना असंभव होगा। उनके प्रसिद्ध वक्तव्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि वे हिंदू–मुस्लिम एकता को स्वराज्य प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य और प्राथमिक शर्त मानते थे। उनकी दृष्टि में स्वराज्य केवल एक भौगोलिक या प्रशासनिक स्वतंत्रता नहीं थी, जहाँ गोरे शासकों की जगह भूरे शासक आ जाएं; बल्कि स्वराज्य एक ऐसा सामाजिक ताना–बाना था जहाँ हर नागरिक, चाहे उसका धर्म कोई भी हो, भयमुक्त होकर रह सके। गांधी जी ने स्पष्ट किया था कि यदि भारत बिना आंतरिक एकता के स्वतंत्रता प्राप्त भी कर लेता है, तो वह स्वतंत्रता खोखली और अस्थाई होगी। इसी वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में राजनीतिक कार्यक्रमों से बढ़कर सांप्रदायिक सद्भाव के रचनात्मक कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी और इसे राष्ट्रवाद के मुख्य विमर्श के रूप में स्थापित किया।

शोध की समस्या–

प्रस्तुत शोध पत्र के समक्ष मुख्य ऐतिहासिक और अकादमिक समस्या एक अत्यंत गहरे और दुखद विरोधाभास का विश्लेषण करना है। इतिहास गवाह है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी जैसा कोई दूसरा नेता नहीं हुआ, जिसने सांप्रदायिक सद्भाव और धार्मिक एकता के लिए अपना पूरा जीवन, अपनी सांगठनिक शक्ति और अंततः अपने प्राणों की आहुति तक दे दी। उन्होंने इस उद्देश्य के लिए दर्जनों बार आमरण उपवास किए, दंगों के बीच नंगे पैर यात्राएं कीं और निरंतर एक धर्मनिरपेक्ष व समावेशी भारत की वकालत की। इसके बावजूद, यह एक ऐतिहासिक वास्तविकता है कि जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलन अपनी स्वतंत्रता और परिपक्वता की ओर बढ़ा, वैसे–वैसे भारतीय उपमहाद्वीप में सांप्रदायिकता का ग्राफ घटने के बजाय लगातार बढ़ता चला गया।

शोध का उद्देश्य–

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य सांप्रदायिक एकता के प्रश्न पर महात्मा गांधी द्वारा समय–समय पर अपनाई गई राजनीतिक रणनीतियों, उनके वैचारिक सिद्धांतों और उनके व्यावहारिक प्रयोगों का एक निष्पक्ष, पूर्वाग्रह–मुक्त और आलोचनात्मक मूल्यांकन करना है। यह शोध पत्र उन ऐतिहासिक मोड़ों की पहचान करने का प्रयास करता है जहाँ गांधीवादी नीतियां सफल रहीं और जहाँ वे औपनिवेशिक चालों व सांप्रदायिक ताकतों के सामने बेअसर साबित हुईं।

2. गांधी जी का वैचारिक ढांचा और धार्मिक बहुलवाद

सर्वधर्म समभाव की अवधारणाः महात्मा गांधी का वैचारिक ढांचा पश्चिमी अर्थों में किसी राजनीतिक सिद्धांतकार का ढांचा नहीं था, बल्कि वह उनके गहरे व्यक्तिगत धार्मिक विश्वासों और नैतिक अनुभवों से उपजा था। गांधी जी के लिए धर्म कोई संकीर्ण कर्मकांड या सांप्रदायिक पहचान नहीं था, बल्कि वह नैतिक सत्य की खोज का माध्यम था। उन्होंने सर्वधर्म समभाव की अनूठी अवधारणा प्रस्तुत की, जिसका अर्थ है– सभी धर्मों के प्रति समान आदर और दृष्टि रखना। गांधी जी मानते थे कि दुनिया के सभी प्रमुख धर्म मूलतः एक ही सार्वभौमिक सत्य की ओर ले जाते हैं, हालांकि उनकी भाषा और अभिव्यक्तियां अलग–अलग हो सकती हैं। उन्होंने हिंदू धर्म के उदारवादी और अद्वैतवादी दर्शन, ईसा मसीह के पहाड़ी उपदेश और इस्लाम के बंधुत्व के सिद्धांतों को मिलाकर एक ऐसी राजनीतिक नैतिकता तैयार की, जो सर्वसमावेशी थी। उन्होंने राजनीति के आध्यात्मिकरण पर बल दिया।

अहिंसा और संवादः सांप्रदायिक तनावों और सामाजिक संघर्षों को सुलझाने के लिए गांधी जी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित हृदय–परिवर्तन की एक विशिष्ट तकनीक विकसित की थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि सांप्रदायिक कड़वाहट को कानून, पुलिस या बल प्रयोग के द्वारा कभी समाप्त नहीं किया जा सकता; इसे केवल आपसी संवाद, सहिष्णुता और बिना किसी द्वेष के किए गए आत्म–बलिदान के द्वारा ही जीता जा सकता है। जब भी देश के किसी हिस्से में सांप्रदायिक दंगे भड़कते थे, गांधी जी किसी प्रशासनिक मशीनरी पर भरोसा करने के बजाय स्वयं दोनों समुदायों के बीच जाकर बैठ जाते थे। वे संवाद को सबसे बड़ा हथियार मानते थे। उनका मानना था कि यदि एक पक्ष बिना प्रतिशोध की भावना के अहिंसक बना रहे और कष्ट सहने को तैयार हो, तो वह विरोधी पक्ष के भीतर सोई हुई मानवीय चेतना को जगा सकता है। लेकिन अकादमिक स्तर पर इस तकनीक का मूल्यांकन करते हुए इतिहासकारों ने पाया है कि यह सिद्धांत व्यक्तिगत स्तर पर जितना प्रभावी था,

आधुनिक राष्ट्र–राज्य की जटिल और संस्थागत सांप्रदायिक राजनीति के सामने उतना ही कमजोर साबित हुआ, क्योंकि संगठित सांप्रदायिक उग्रवाद अक्सर नैतिक अपीलों और भावुक संवादों की सीमाओं को लांघ जाता था।

3. खिलाफत आंदोलन और हिंदू–मुस्लिम एकता का चरमोत्कर्ष (1919–1922)

रणनीतिक गठबंधनरू प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद भारतीय राजनीति में एक ऐसा अभूतपूर्व मोड़ आया जिसने गांधी जी को अपनी हिंदू–मुस्लिम एकता की रणनीति का सबसे बड़ा प्रयोग करने का अवसर दिया। युद्ध में तुर्की की पराजय के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा इस्लामिक जगत के आध्यात्मिक गुरु, तुर्की के सुल्तान (खलीफा) के अधिकारों को समाप्त करने की घोषणा की गई। इसके विरोध में भारत के मुस्लिम समाज में अंग्रेजों के खिलाफ तीव्र आक्रोश भड़क उठा और उन्होंने श्खिलाफत आंदोलनश की शुरुआत की। इसी समय भारत में रोलट एक्ट और जलियांवाला बाग हत्याकांड के खिलाफ कांग्रेस के भीतर भी तीव्र असंतोष था।

महात्मा गांधी ने इस ऐतिहासिक परिस्थिति को भांपते हुए एक अत्यंत साहसिक और रणनीतिक निर्णय लिया। उन्होंने कांग्रेस को राजी किया कि वह मुस्लिम समाज के खिलाफत के मुद्दे का पूर्ण समर्थन करे और इसके बदले में देशव्यापी असहयोग आंदोलन में मुस्लिम समाज की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए। गांधी जी ने इस गठबंधन को एक ऐसे सुनहरे अवसर के रूप में देखा जो अगले सौ वर्षों में भी दोबारा नहीं मिलने वाला था। उनका मानना था कि एक साझा दुश्मन (ब्रिटिश हुकूमत) के खिलाफ जब दोनों समुदाय एक साथ सड़कों पर उतरेंगे, तो उनके बीच का ऐतिहासिक अविश्वास हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा।

आंदोलन का वर्ष	मुख्य मुद्दा	सांगठनिक आधार	जन-भागीदारी
1919-1920	खिलाफत आंदोलन (धार्मिक-राजनीतिक)	खिलाफत कमेटी और उलेमा	मुख्य रूप से मुस्लिम समुदाय
1920-1922	असहयोग आंदोलन (राष्ट्रीय-राजनीतिक)	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	अखिल भारतीय (सभी समुदाय)
परिणाम	**ऐतिहासिक रणनीतिक गठबंधन**	**साझा मंच (गांधीवादी नेतृत्व)**	**भारतीय इतिहास का सबसे बड़ा जन-एकत्रीकरण**

आलोचनात्मक मूल्यांकनः धार्मिक पहचान का राजनीतिकरण और मोपला विद्रोह का संकट

तथापि, खिलाफत आंदोलन का एक अत्यंत गंभीर और आलोचनात्मक पक्ष भी है, जिसने दूरगामी स्तर पर भारतीय राजनीति को प्रभावित किया। बिपन चंद्र और सुमित सरकार जैसे प्रख्यात इतिहासकारों का मानना है कि खिलाफत आंदोलन को समर्थन देकर गांधी जी ने एक बहुत बड़ी रणनीतिक भूल भी की थी। इस गठबंधन का आधार धर्मनिरपेक्ष या राजनीतिक चेतना नहीं था, बल्कि एक शुद्ध धार्मिक और अलौकिक मुद्दा था। खिलाफत का समर्थन करने की प्रक्रिया में गांधी जी ने मुस्लिम समाज के आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष नेतृत्व को आगे बढ़ाने के बजाय अनजाने में पारंपरिक उलेमा, मौलवियों और रूढ़िवादी धार्मिक नेतृत्व को राष्ट्रीय मंच पर मुख्यधारा की राजनीतिक मान्यता दे दी। इसके परिणामस्वरूप, मुस्लिम आम जनता के भीतर श्भारतीय नागरिकश की चेतना मजबूत होने के बजाय उनकी धार्मिक पहचान (Religious Identity) और अधिक मुखर होकर सामने आई।

इस रणनीति की व्यावहारिक सीमाएं तब उजागर हुईं जब फरवरी 1922 में चौरी–चौरा की हिंसक घटना के बाद गांधी जी ने अचानक असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया। आंदोलन के अचानक रुकने से खिलाफत की हवा भी निकल गई और जो मुस्लिम समाज एक बड़े धार्मिक आवेग के साथ आंदोलन में कूदा था, वह खुद को ठगा हुआ और दिशाहीन महसूस करने लगा। इसके तुरंत बाद, जो सांप्रदायिक ऊर्जा अंग्रेजों के खिलाफ लगी थी, वह आंतरिक मोर्चे पर मुड़ गई।

इसकी सबसे हिंसक परिणति 1921–22 में मालाबार (केरल) के श्मोपला विद्रोहश के रूप में सामने आई। आंदोलन की शुरुआत ब्रिटिश विरोधी और जमींदार विरोधी आंदोलन के रूप में हुई थी, लेकिन नेतृत्व की कमी और धार्मिक कट्टरता के कारण इसने जल्द ही एक अत्यंत वीभत्स सांप्रदायिक रूप अख्तियार कर लिया, जहाँ बड़े पैमाने पर हिंदुओं को निशाना बनाया गया (Sarkar 210)। मोपला विद्रोह की गूंज ने पूरे देश के हिंदू–मुस्लिम सद्भाव को गहरा झटका दिया। इसके बाद के वर्षों में देश भर में शुद्धि, संगठन, तबलीग और तंजीम जैसे सांप्रदायिक आंदोलनों की बाढ़ आ गई, जिसने खिलाफत के दौर में बनी एकता की नींव को पूरी तरह खोखला कर दिया। इस प्रकार, खिलाफत आंदोलन जहाँ गांधीवादी एकता के प्रयासों का चरमोत्कर्ष था, वहीं वह भारतीय राजनीति में धार्मिक पहचान के अति–राजनीतिकरण का प्रारंभिक बिंदु भी साबित हुआ।

4. अंतर्द्वंद्व का दौर और गांधी जी के उपवास (1920 और 1930 का दशक)

सांप्रदायिक दंगों का उभाररू फरवरी 1922 में चौरी–चौरा की हिंसक घटना के बाद असहयोग आंदोलन के अचानक स्थगन ने भारतीय राष्ट्रीय राजनीति को एक गहरे राजनीतिक शून्यवाद में धकेल दिया। जब जन–आंदोलन का साझा मंच बिखर गया, तब औपनिवेशिक विरोधी साझा मोर्चा आंतरिक ध्रुवीकरण की ओर मुड़ गया। 1920 के दशक के मध्य से लेकर अंत तक का समय भारतीय इतिहास में सबसे भयावह सांप्रदायिक दंगों के उभार का गवाह बना। अमृतसर, मुल्तान, सहारनपुर, और विशेषकर कोहाट (1924) में हुए वीभत्स सांप्रदायिक दंगों ने खिलाफत के दौर की हिंदू–मुस्लिम एकता के दावों को पूरी तरह खोखला साबित कर दिया।

इस शून्यता के दौर में दोनों समुदायों के मध्य अविश्वास इतना गहरा हो गया कि जहाँ एक तरफ हिंदू महासभा और आर्य समाज ने शुद्धि और संगठन आंदोलन चलाए, वहीं दूसरी ओर मुस्लिम संगठनों ने तबलीग और तंजीम जैसी अलगाववादी और सुरक्षात्मक संस्थाओं का जाल बिछा दिया। गांधी जी ने जेल से रिहा होने के बाद पाया कि जिस राष्ट्रीय ताने–बाने को उन्होंने बड़ी शिद्दत से बुना था, वह सांप्रदायिकता की आंधी में छिन्न–भिन्न हो रहा था।

गोलमेज सम्मेलन और सांप्रदायिक पंचाट (1932): 1930 का दशक आते–आते सांप्रदायिकता का प्रश्न केवल सामाजिक दंगों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह संवैधानिक अधिकारों और प्रतिनिधित्व की जंग में बदल गया। लंदन में आयोजित द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (1931) में गांधी जी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया, लेकिन वहाँ वे ब्रिटिश सरकार की सोची–समझी कूटनीति और विभिन्न भारतीय गुटों के संकीर्ण दावों के चक्रव्यूह में फंस गए। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जी मैक्डोनाल्ड द्वारा 1932 में घोषित सांप्रदायिक पंचाट ब्रिटिश साम्राज्य की फूट डालो और राज करोश की नीति का सबसे घातक प्रहार था। इस पंचाट के माध्यम से न केवल मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल को संस्थागत किया गया, बल्कि दलितों (Depressed Classes) को भी हिंदू समाज से अलग कर पृथक निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया।

गांधी जी ने इसे हिंदू समाज को विभाजित करने और राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने की एक गहरी साम्राज्यवादी साजिश के रूप में देखा। इसके विरोध में उन्होंने यरवदा जेल में आमरण अनशन शुरू किया, जिसकी परिणति डॉ. बी.आर. आंबेडकर के साथ हुए ऐतिहासिक पूना पैक्ट (Poona Pact, 1932) के रूप में हुई। पूना पैक्ट के माध्यम से गांधी जी दलितों के लिए पृथक निर्वाचन को संयुक्त निर्वाचन मंडल के भीतर श्आरक्षित सीटोंश में बदलने में सफल रहे और इस प्रकार उन्होंने सामाजिक विभाजन को तो टाल दिया; लेकिन जब बात मुस्लिम प्रतिनिधित्व की आई, तो जिन्ना की चौदह सूत्री मांगों और हिंदू महासभा के अड़ियल रुख के बीच गांधीवादी मध्यस्थता की रणनीतियां पूरी तरह विफल साबित हुईं। ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिक विभाजन को कानूनी अमलीजामा पहना दिया, जिसने भविष्य के अलगाववाद का मार्ग प्रशस्त किया।

5. द्वि–राष्ट्र सिद्धांत और गांधीवादी राजनीति की सीमाएं (1940 का दशक)

मुस्लिम लीग का उभार और जिन्ना की चुनौतीरू 1937 के प्रांतीय चुनावों में कांग्रेस की भारी जीत और मुस्लिम लीग की करारी हार के बाद मोहम्मद अली जिन्ना ने अपनी राजनीतिक रणनीति को पूरी तरह बदल दिया। उन्होंने मुस्लिम जनमानस के भीतर ष्इस्लाम खतरे में हैष् का नारा बुलंद किया और मार्च 1940 के लाहौर अधिवेशन में आधिकारिक रूप से द्वि–राष्ट्र सिद्धांत (Two-Nation Theory) का प्रस्ताव पारित कर अलग मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान की मांग कर दी। जिन्ना का तर्क था कि हिंदू और मुसलमान केवल दो धार्मिक समुदाय नहीं हैं, बल्कि दो अलग–अलग संस्कृतियां और राष्ट्र हैं जो कभी एक साथ नहीं रह सकते।

जिन्ना–गांधी वार्ता (1944): प्रशासनिक गतिरोध और वैचारिक ध्रुव

सांप्रदायिक गतिरोध को दूर करने और विभाजन के टलते हुए संकट को भांपते हुए सितंबर 1944 में बंबई में श्जिन्ना–गांधी वार्ताश (Jinnah&Gandhi Talks) आयोजित की गई। गांधी जी ने चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के फॉर्मूले (CR Formul) के आधार पर जिन्ना से बात की, जिसमें यह प्रस्ताव था कि आजादी के बाद मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में जनमत संग्रह कराकर उनके आत्मनिर्णय के अधिकार पर विचार किया जा सकता है। यह वार्ता पूरी तरह असफल रही क्योंकि दोनों नेता दो अलग–अलग वैचारिक ध्रुवों पर खड़े थे।

कांग्रेस के भीतर की आंतरिक राजनीतिः हिंदू पुनरुत्थानवाद का दबाव

आलोचनात्मक विश्लेषण के अंतर्गत यह देखना भी आवश्यक है कि सांप्रदायिकता के खिलाफ गांधी जी की लड़ाई केवल मुस्लिम लीग से नहीं थी, बल्कि उन्हें कांग्रेस के भीतर और बाहर बढ़ रहे श्हिंदू पुनरुत्थानवादश से भी जूझना पड़ रहा था। मदन मोहन मालवीय, के.एम. मुंशी और पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे नेताओं का झुकाव कई बार ऐसे विमर्शों की ओर हो जाता था जो मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया में उग्र हिंदू राष्ट्रवाद को बढ़ावा देते थे।

कांग्रेस के कई कार्यक्रमों, जैसे प्रार्थना सभाओं में श्वंदे मातरम्श का गान, श्गो–रक्षाश पर अत्यधिक बल और श्रामराज्यश जैसे रूपकों का उपयोग हालांकि गांधी जी द्वारा जनता को जोड़ने के लिए किया जाता था, लेकिन मुस्लिम लीग ने इन प्रतीकों का दुष्प्रचार कर मुस्लिम आम जनता के मन में यह डर बैठा दिया कि स्वतंत्र भारत में हिंदू राज स्थापित होने वाला है। गांधी जी कांग्रेस के भीतर मौजूद इन पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों को पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर सके, जिसने उनके धर्मनिरपेक्ष दावों की साख को अल्पसंख्यक समाज के एक बड़े वर्ग की नजरों में कमजोर किया ।

6. विभाजन की त्रासदी, नोआखली और गांधी जी का एकाकी संघर्ष (1946–1947)

डायरेक्ट एक्शन डे (16 अगस्त 1946): जब कैबिनेट मिशन योजना की विफलता के बाद अंतरिम सरकार का गठन हुआ, तब मोहम्मद अली जिन्ना ने पाकिस्तान की मांग को मनवाने के लिए संवैधानिक तौर–तरीकों को छोड़कर सड़कों पर उतरने का फैसला किया। मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त 1946 को डायरेक्ट एक्शन डे (प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस) घोषित किया। इसके परिणामस्वरूप कलकत्ता में जो भयानक हिंदू–मुस्लिम दंगे भड़के, उन्हें इतिहास में ग्रेट कलकत्ता किलिंग्स के नाम से जाना जाता है। कुछ ही दिनों में हिंसा की यह लपटें नोआखली (अब बांग्लादेश में), त्रिपुरा, बिहार और पंजाब तक फैल गईं। यह आम दंगा नहीं था, बल्कि यह एक संगठित गृहयुद्ध और नस्लीय सफाये जैसा दौर था, जिसने ब्रिटिश सत्ता की प्रशासनिक मशीनरी और कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व को स्तब्ध कर दिया।

नोआखली और बिहार की पदयात्रारू श्वन–मैन बाउंड्री फोर्सश का एकाकी संघर्ष

जब पूरी कांग्रेस नई दिल्ली में सत्ता हस्तांतरण, मंत्रालयों के बंटवारे और विभाजन की शर्तों पर ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन के साथ वातानुकूलित कमरों में बातचीत कर रही थी, तब 77 वर्ष का वह बूढ़ा जादूगर सत्ता की चकाचौंध से दूर सुदूर नोआखली के कीचड़ भरे रास्तों पर नंगे पैर घूम रहा था। गांधी जी का नोआखली और उसके बाद बिहार के दंगा प्रभावित इलाकों का दौरा उनके जीवन का सबसे प्रखर और उदात्त मानवीय संघर्ष था। वे गांवों में घूम–घूम कर दंगाइयों के सामने खड़े हो जाते थे, उनके भजनों और प्रार्थनाओं ने कई स्थानों पर हिंसक भीड़ के हाथ रोक दिए। लॉर्ड माउंटबेटन ने गांधी जी के इस एकाकी संघर्ष को देखकर उन्हें श्वन–मैन बाउंड्री फोर्सश की उपाधि दी थी और स्वीकार किया था कि जो काम पंजाब में पचास हजार सशस्त्र सैनिक नहीं कर पा रहे थे, वह काम बंगाल में इस अकेले वृद्ध ने कर दिखाया था। लेकिन यह सफलता एक व्यक्तिगत नैतिक विजय थी, सांगठनिक राजनीतिक विजय नहीं।

7. आलोचनात्मक मूल्यांकन

इतिहासकारों के विविध दृष्टिकोणः महात्मा गांधी और सांप्रदायिक एकता के प्रश्न पर आधुनिक भारतीय इतिहासलेखन स्पष्ट रूप से विभिन्न वैचारिक धाराओं में बंटा हुआ नजर आता है। इन दृष्टिकोणों का विश्लेषण गांधीवादी राजनीति की सफलताओं और विफलताओं को समझने के लिए अनिवार्य है–

राष्ट्रवादी इतिहासलेखन रू इस धारा के इतिहासकारों (जैसे ताराचंद, बी. आर. नंदा) का मानना है कि गांधी जी सांप्रदायिक एकता के सच्चे मसीहा थे। उनका तर्क है कि गांधीवादी रणनीतियों में कोई मौलिक कमी नहीं थी; बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य की सुनियोजित फूट डालो और राज करो की नीति, सांप्रदायिक पंचाट और मुस्लिम लीग के अड़ियल अलगाववाद ने मिलकर ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दी थीं कि देश का विभाजन अपरिहार्य हो गया। इस दृष्टिकोण के अनुसार, गांधी जी का संघर्ष एक ऐसे औपनिवेशिक ढांचे के खिलाफ था जो भारतीय समाज की आंतरिक दरारों का संस्थागत दोहन कर रहा था। संशोधनवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोण रू बिपन चंद्र, सुमित सरकार और शशिशेखर जैसी आधुनिक इतिहासकारों की धारा गांधीवादी नीतियों का अधिक तीखा और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करती है। बिपन चंद्र का तर्क है कि गांधी जी श्सांप्रदायिकताश की आधुनिक राजनीतिक प्रकृति को पूरी तरह समझने में चूक गए। वे सांप्रदायिकता को एक ष्झूठी चेतनाष मानते थे जिसे केवल नैतिक अपीलों से नष्ट नहीं किया जा सकता था। इस दृष्टिकोण के अनुसार, गांधी जी द्वारा सार्वजनिक विमर्श में धार्मिक प्रतीकों– जैसे रामराज्य की अवधारणा, प्रार्थना सभाओं में धार्मिक भजनों का गायन, और श्गो–रक्षाश पर अत्यधिक बलकृका उपयोग यद्यपि बहुसंख्यक जनता को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के लिए किया गया था, परंतु अल्पसंख्यक विमर्श में इसे अक्सर गलत समझा गया। मुस्लिम लीग ने इन प्रतीकों को राजनीतिक हथियार बनाकर मुस्लिम आम जनमानस के भीतर यह डर पैदा कर दिया कि कांग्रेस का राष्ट्रवाद अंततः श्हिंदू पुनरुत्थानवादश का ही एक आधुनिक मुखौटा है।

शोध कार्यप्रणाली

प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया

है। इसके अंतर्गत प्राथमिक स्रोतों जैसेकृद कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, तत्कालीन समकालीन दस्तावेज़ों, भाषणों तथा उत्तर–औपनिवेशिक काल के प्रमुख इतिहासकारों (बिपन चंद्र, सुमित सरकार, बी.आर. नंदा) के माध्यमिक स्रोतों के आलोचनात्मक पाठ का सहारा लिया गया है। शोध की प्रकृति गुणात्मक है, जिसका उद्देश्य गांधीवादी रणनीतियों के अंतर्निहित विरोधाभासों और उनकी व्यावहारिक सीमाओं का वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक मूल्यांकन करना है।

8. निष्कर्ष

इस संपूर्ण शोध का निष्कर्ष यह है कि महात्मा गांधी सांप्रदायिकता की आधुनिक, संस्थागत और कानूनी सांगठनिक शक्ति को रोकने में सांगठनिक और राजनीतिक रूप से असफल रहे। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कूटनीतिक चक्रव्यूह और आधुनिक राजनैतिक वीटो की भाषा बोलने वाले मोहम्मद अली जिन्ना के अलगाववादी सांगठनिक ढांचे को भेद नहीं पाए। उनकी श्हृदय–परिवर्तनश की तकनीक व्यक्तिगत और स्थानीय स्तर पर (जैसे नोआखली में) अद्भुत रूप से सफल रही, लेकिन वह आधुनिक राष्ट्र–राज्य की जटिल सांप्रदायिक राजनीति के सामने बेअसर साबित हुई।

वर्तमान की प्रासंगिकता

आज इक्कीसवीं सदी में भी, जब भारत और संपूर्ण दक्षिण एशिया का समाज धार्मिक ध्रुवीकरण, बहुसंख्यकवाद और आंतरिक अविश्वास की नई चुनौतियों से जूझ रहा है, गांधी जी का दर्शन पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गया है। गांधी जी भले ही अपने जीवनकाल में विभाजन की त्रासदी को नहीं रोक पाए, लेकिन सांप्रदायिक एकता के लिए दिया गया उनका वैचारिक ढांचा और उनका बलिदान आज भी एक शांतिपूर्ण, समावेशी और बहुलवादी समाज के निर्माण का एकमात्र मार्गदर्शक सिद्धांत बना हुआ है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ सूची–

1. Brown, Judith M. Gandhi and Civil Disobedience: The Mahatma in Indian Politics 1928-1934. Cambridge University Press, 1977 p.13.
2. Chandra, Bipan. Communalism in Modern India. Vikas Publishing House, 1984 p.155.
3. Hasan, Mushirul, editor. India's Partition: Process, Strategy and Mobilization. Oxford University Press, 1993 p.75.
4. Gandhi, M. K. The Collected Works of Mahatma Gandhi: Communal Unity. Vols. 24 & 25, Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1924 p.91.
5. Sarkar, Tanika. Hindu Nationalism and Indian Politics. Permanent Black, 2001 p.41.
6. Datta, Nonica. History and Communalism in Punjab. Oxford University Press, 1999 p.77.
7. Jalal, Ayesha. The Sole Spokesman: Jinnah, the Muslim League and the Demand for Pakistan. Cambridge University Press, 1985 p.189.
8. Nanda, B. R. Gandhi, Pan-Islamism, Imperialism, and Nationalism in India. Oxford University Press, 1989 p.105.
9. Prasad, Bimal. The Pathways to Pakistan. Manohar Publishers, 2000 p.67.
10. Singh, Anita Inder. The Origins of the Partition of India, 1936-1947. Oxford University Press, 1987 p.15-22.
11. Bandyopadhyay, Sekhar. From Plassey to Partition: A History of Modern India. Orient Blackswan, 2004 p.335.
12. Chandra, Bipan, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, and K. N. Panikkar. India's Struggle for Independence. Penguin Books, 1989 p.277.

13. Prasad, Bimal. The Pathways to Pakistan. Manohar Publishers, 2000 p.128.
14. Seikh, Chander. Gandhi and the Communal Problem: An Analytical Study. Progressive Publishers, 2014 p.10-15.
15. Sarkar, Sumit. Modern India: 1885–1947. Macmillan, 1983 p.85.

Cite this Article-

'नीतु कुमारी', 'महात्मा गांधी और सांप्रदायिक एकता का प्रश्नः एक आलोचनात्मक और ऐतिहासिक मूल्यांकन' ResearchNext International Multidisciplinary Journal, ISSN: 3107-9725 (Online), Volume:2, Issue:1, January-March 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."